वैदिक यागों का स्वरूप

डॉ० हृदय रञ्जन शर्मा

भारतीय संस्कृति में यज्ञों का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान वर्णित हुआ है। यज्ञ के द्वारा मनुष्यजीवन के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थ प्राप्त किए जाते हैं। अर्थात् यज्ञ साधनरूप वह जीवन पद्धति है जिसके माध्यम से समस्त जन अपनी नित्य सुखशान्ति रूप पूर्णता को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। शास्त्रों में जीवों को ईश्वर का अंश बतलाया गया है। संसार में प्रत्येक जीव को मूलत: ईश्वरीय भाव, स्वभाव, तथा गुणों से युक्त माना गया है। परन्तु अज्ञानरूपी माया के आवरण तथा प्रभाव के कारण वह अपनी पूर्णता को पहचान नहीं पाता और अनभिज्ञ रहता हुआ भव-जाल के दु:ख से ग्रसित व पीड़ित होता रहता है। अत: तात्पर्य रूप से यज्ञ ईश्वर द्वारा प्रदत्त वह कर्त्तव्य रूप अपूर्व साधन हैं, जिनके द्वारा मनुष्य अपनी तथा प्रकृति के चेतन, अचेतनमय समस्त पदार्थों की रक्षा, सुव्यवस्था और साम्यावस्था अर्थात् पूर्णता को अधिगत करता व कराता है।

वेद ज्ञान एवं विज्ञान की अमूल्य धरोहर तथा समस्त सृष्टि के संविधान के रूप में अनादि काल से इस जगत् में प्रामाणिक विधा के साथ प्रतिष्ठित हैं। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर ने इस जगत् की उत्पत्ति अग्नि, तथा सोम नामक दो तत्त्वों से की है। ये दोनों तत्त्व इस संसार के समस्त चेतन, अचेतन रूप पदार्थों में स्थूल तथा सूक्ष्म रूप से विराजमान रहते हुए परस्पर सम्बद्ध हैं। इनमें अग्नि तत्त्व जीव अर्थात् भोक्ता (Eater) रूप में, तथा सोम तत्त्व भोग्य द्रव्य (Edible) के रूप में क्रियाशील हैं। वेदों में यही सोम तत्त्व यज्ञ के रूप में परिभाषित हुआ है। यज्ञों के प्रधानत: तीन प्रकार हैं जो युगधर्म की व्यवस्था के आधार पर मनुष्य की प्रकृति तथा योग्यता को ध्यान में रखकर ऋषि महर्षियों तथा मान्य आचार्यों ने प्रकाशित किए हैं।

(1) श्रौत याग-इस वर्ग के अन्तर्गत पांच प्रकार के प्रधान यागों का विधान प्राप्त होता है। यथा—अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु तथा सोम याग। इनमें से अग्निहोत्र का सम्बन्ध अहोरात्र रूप चौबीस घंटे से है। इसमें पवित्र अग्नि में सुबह शाम आहुति का विधान है। इसके द्वारा अहोरात्र काल के रूप में व्याप्त तथा क्रियाशील दिव्य शक्ति (divine energy) को अधिगत किया जाता है। इसी क्रम में दर्शपूर्णमास नामक यज्ञ, जो प्रत्येक पूर्णिमा तथा अमावस्या काल से सम्बद्ध है, के द्वारा मासिक काल की दिव्यशक्ति, चातुर्मास्य नामक याग द्वारा प्रत्येक तीन महीने की दिव्यशक्ति, पशु याग द्वारा अयन रूप (the equinoctial, and solstitial points) की दिव्य शक्ति एवं सोमयाग द्वारा संवत्सर रूप एक वर्ष के पूर्णकाल की दिव्यशक्ति को आत्मसात् करने का विधान वर्णित है। वेदों में वर्णित इस वर्ग के सभी छोटे एवं बड़े यज्ञ उपर्युक्त पांच प्रधान यागों की प्रकृति के अन्तर्गत सम्पन्न किए जाते हैं।

इन्हें श्रौत याग इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सभी यज्ञ श्रौत नामक अग्नियों से सम्बद्ध हैं। श्रौत नामक अग्नियां मुख्यत: तीन हैं गार्हपत्य, आह्वनीय तथा दक्षिणाग्नि। इन अग्नियों को वेदों में विहित काल, तथा विधि विधान के साथ घर में प्रतिष्ठित तथा सदा जाग्रत रखा जाता है तथा यथासमय इन्हीं पवित्र अग्नियों में उपर्युक्त श्रौत अर्थात् वेदों में प्रतिपादित यज्ञ सम्पन्न किए जाते हैं। इन यज्ञों का प्रचलन प्रधान रूप से सत्ययुग तथा त्रेता युग में था। द्वापर युग में क्रमश: मनुष्य की सामर्थ्य शक्ति में कमी तथा युगानुरूप प्राकृतिक परिवर्तन के कारण जब लोगों को इन श्रौत यागों को सम्पन्न करने में अत्यधिक कठिनाई होने लगी तब देव शक्ति युक्त ऋषि मनीषियों ने वेदोक्त स्मार्त कर्मों (यज्ञ, होम, दान आदि) जो श्रौत यागों की अपेक्षा सरल, तथा अल्पकाल साध्य थे, को प्रधान रूप से सामाजिक व्यवस्था के साथ व्यवहृत तथा प्रचलित कराया। स्मार्त कर्म के अन्तर्गत सभी विवाहादि संस्कार व औपासन, अष्टका प्रभृति याग आदि परिगणित होते हैं। स्मार्त (गृह्य या आवस्थ्य) नामक अग्नि में सम्पन्न किए जाने के कारण इन कर्मों को स्मार्तकर्म कहा जाता है।

वर्तमान समय में रुद्राभिषेक, शतचण्डी तथा विष्णुमहायज्ञ आदि समस्त अनुष्ठान इसी स्मार्त याग की युगानुरूप परिवर्तित तथा परिष्कृत कड़ी रूप में प्रचलित हैं। ऋषि-कल्प आप्त (प्रामाणिक) पुरुषों द्वारा वैदिक श्रौत-स्मार्त यज्ञों के सार संक्षेप रूप में, इनका संकलन पद्धति ग्रन्थों में निबद्ध है।

उपर्युक्त समस्त श्रौत, स्मार्त तथा पद्धति श्रृंखला के यज्ञादि कर्म मनुष्यों की तथा समस्त जगत् की सुख-शान्ति तथा व्यवस्था हेतु विहित हुए हैं। इनमें से अपनी सामर्थ्य तथा श्रद्धाविश्वास के अनुसार कोई भी यज्ञ, होम, दान आदि आज भी उतना ही लाभप्रद तथा समाज एवं राष्ट्र की समृद्धि के लिए उपयोगी हैं जितना कि वैदिक काल में था। आज के अत्युन्नत वैज्ञानिक युग में विश्व के प्राय: सभी विकसित राष्ट्र सामाजिक, चिकित्सा, अन्तरिक्ष आदि विज्ञान की विधाओं के लिए सूक्ष्म तथा मानवोपयोगी सिद्धान्तों तथा तत्त्वों को इन वैदिक यागों की प्राचीन वैज्ञानिक प्रक्रिया के माध्यम से समझने तथा अनुसंधान द्वारा पुन: स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। हम भारतीयों को इस दिशा में सचेत होने तथा साहसपूर्वक आगे बढ़ने का संकल्प लेकर सक्रिय होने की आवश्यकता है। सौभाग्य से इस क्षेत्र में कतिपय मान्य संस्थाएं दृढ़ता के साथ अग्रसर हैं। इनमें "ज्ञान प्रवाह" संस्था की संकल्पशक्ति तथा उद्देश्यपूर्ण सकारात्मक भूमिका सर्वथा स्तुत्य एवं उदाहरणीय है।

वैदिक श्रौत स्मार्तादि यागों का एक दृष्टि में निदर्शन—

श्रौतकर्म —(1) अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढ़पशुबन्ध, सौत्रामणी तथा पिण्डपितृयज्ञ। ये सभी हविर्यज्ञसंस्था के अन्तर्गत आते हैं। हविर्यज्ञसंस्था का तात्पर्य सोम (रस) द्रव्य रहित याग। (2) अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, तथा अप्तोर्याम। ये सभी सोम द्रव्य युक्त याग हैं। अन्य सभी अश्वमेध, राजसूय, चयन, सत्र आदि बड़े तथा प्रसिद्ध यज्ञ सोमयज्ञ के अन्तर्गत ही परिगणित होते हैं। इनमें सोम (रस) द्रव्य प्रधान तथा अन्य पुरोडाश, चरु, दूध, दही, घृत, पशु आदि द्रव्य गौण रूप से विहित होते हैं।

स्मार्त कर्म —औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिकश्राद्ध, श्रवणा तथा शूलगव आदि।

पद्धति कर्म —रुद्राभिषेक (रुद्र, रुद्री, लघुरुद्र, महारुद्र, अतिमहारुद्र आदि), शतचण्डी, सहस्रचण्डी, लक्षचण्डी आदि, विष्णुयाग, गणेशार्चन आदि। ये सभी यज्ञ लौकिक अग्नि में सम्पन्न किए जाते हैं।

शास्त्रों में द्रव्यभेद के आधार पर यागों का एक अन्य वर्गीकरण इष्टि, पशु तथा सोम के रूप में प्राप्त होता है। यथा-

इष्टियाग—जिसमें धान (चावल), जौ, दूध, दही, घी आदि से निर्मित हवि प्रदान की जाए। इस प्रकृति का प्रधान याग दर्शपूर्णमास है। मित्रविन्देष्टि आदि यज्ञ इसी के अन्तर्गत आते हैं।

पशुयाग— जिसमें विहित पशु के हृदय, वपा आदि भाग प्रधान द्रव्य, तथा इष्टियाग के अन्तर्गत विहित द्रव्य गौण रूप से निरूपित हों वह पशुयाग कहलाता है।

सोमयाग— जिसमें सोमलता का रस प्रधान द्रव्य तथा पशु व इष्टियाग के द्रव्य गौण रूप से विहित हों वह सोमयाग कहलाता है।

कलियुग के इस द्वितीय चरण में सोमलता की अनुपलब्धता तथा पशुयाग में अश्व, गौ आदि के द्रव्य का सर्वथा निषेध होने के कारण केवल इष्टियाग ही विशेष रूप से सम्पन्न किए जाते हैं। उपर्युक्त सभी यज्ञों का विधान सृष्टि के क्रम को पूर्ण रूप से व्यवस्थित तथा सन्तुलित बनाए रखने की वैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत वेदों में वर्णित हुआ है।